इस्लामी सन्देश

और

मुसलमानों की ज़िम्मेदारी

विषय-सूची

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
अल्लाह रहमान रहीम के नाम से

इस किताब में इस बात की कोशिश की गई है कि साधारण पढ़े-लि
लोगों को सादा और सरल ज़ुबान में इस्लामी सन्देश की बुनिय
बातों से वाक़िफ़ करा दिया जाये, ताकि वे इसे पढ़ कर यह बात पूरी त
जान जायें कि इस्लाम का सन्देश क्या है और एक मुसलमान पर
सिलसिले में क्या ज़िम्मेदारियां आ पड़ती हैं? और फिर वे
ज़िम्मेदारियों को पूरा करने के लिए तैयार हो सकें। खुदा करे यह कि
इस मक़सद के लिए मुफ़ीद साबित हो।

बुनियादी अक़ीदा

हर वह शख़्स जो सच्चे दिल से कलिमा **"ला इला-ह इल्लल्लाहु**
हम्मदुर्रसूलुल्लाह" का इक़रार करता है, मुसलमान है और जो ऐसा
हीं करता इस्लाम से उसका कोई भी नाता नहीं रहता। पहला शख़्स
ल्लाह का प्यारा और उसकी रहमत का हक़दार होता है। उसके लिए
न्नत के दरवाज़े खुलेंगे, जबकि दूसरा आदमी अल्लाह के ग़ज़ब का
क़दार है और 'आख़िरत' की हमेशा रहने वाली ज़िंदगी में उसका ठिकाना
ोज़ख़ होगा। यह है वह बुनियादी बात जो क़ुरआन में बतायी गई है।
ाचिए! जब सारे ही इन्सान अल्लाह के बन्दे हैं, उसी ने सबको पैदा
या है और वही सबको पाल रहा है, तो फिर यह क्या बात है कि सिर्फ़
ला इला-ह इल्लल्लाह" और "मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह" के दो जुम्लों के
क़रार और इन्कार से इन्सान और इन्सान में इतना बड़ा फ़र्क़ हो जाता है।
न दो जुम्लों में आख़िर क्या बात है जो इन्सान को इस तरह दो दर्जों में
ट देती है।

यह तो कोई भी नहीं मान सकता कि इन दो जुम्लों (वाक्यों) को सिर्फ़
ह से निकाल देने में कोई ऐसा जादू है, जिससे इन्सान और इन्सान में
तना बड़ा फ़र्क़ हो जाता है। हक़ीक़त में यह फ़र्क़ सिर्फ़ उन बातों को
नने और न मानने ही के सबब पैदा हो सकता है, जो इन दोनों जुम्लों में
यान की गई हैं। जो शख़्स इन जुम्लों का सच्चे दिल से इक़रार करता
वह हक़ीक़त में दो बड़ी अहम और बुनियादी बातों का इक़रार करता है
ौर कहता है कि ये दोनों बातें मेरे मन में बैठ गयीं हैं और यह मानी हुई
त है कि जब कोई बात आदमी के मन में बैठ जाती है तो उसका बर्ताव
ौर अमल भी उसी के मुताबिक़ हो जाता है। मिसाल के तौर पर एक ऐसे
ादमी को लीजिए, जिसके मन में रुपये-पैसे का मोह बसा हुआ है।
सकी हालत यह होती है कि उसकी बात-चीत से, उसके मामलों से, उसके

ताल्लुक़ात से, ग़रज़ यह कि उसकी हर बात से आपको महसूस होगा कि
वह माल और दौलत का लोभी है और उसकी नज़र में कोई भी दूसरी
चीज़ पैसे से बढ़कर प्यारी नहीं है । सुबह से शाम तक वह जो दौड़-धूप
करेगा, जिस तरह अपना वक़्त लगायेगा, जिस तरह के कामों में दिलचस्पी
लेगा, उन सबका यही मक़्सद होगा कि वह केवल रुपया चाहता है । रुपये
के मुक़ाबले उसे न रिश्ते-नाते महबूब हैं, न रिश्तेदारी का .ख्याल है और
न किसी दोस्ती का लिहाज़ । इसी तरह जिन लोगों ने पद और गद्दियों को
हासिल करना अपना मक़्सद बना लिया है या जिनकी नज़र कुछ इल्मी
काम करने पर जम गई है । आप देखेंगे कि उनकी पूरी ज़िंदगी उसी के
रंग में रंगी हुई है । उनका उठना-बैठना, सोना-जागना, सब कुछ उसी
मक़्सद के लिए होकर रह गया है, जिसे उन्होंने अपना रखा है ।

अब आइये ! इन दोनों जुम्लों के मायने और उनमें बयान की जाने
वाली अहम बातों को समझिये, जिनका इक़रार इन्सान को 'काफ़िर'
(अधर्मी) से 'मोमिन' (आस्तिक), नापाक से पाक और 'जहन्नमी' से 'जन्नती'
बना देता है । इन जुम्लों के ज़रिये इन्सान जिन दो बातों का इक़रार करता
है, उनमें से पहली बात तो यह है कि "अल्लाह के अलावा कोई इलाह
नहीं ।" जब वह यह कहता है कि मैं अल्लाह के अलावा किसी और को
.खुदा नहीं मानता तो इसका मतलब यह होता है कि उसके नज़दीक पैदा
करने वाला सिर्फ़ अल्लाह है । उसके सिवा और कोई ऐसा नहीं जिसने
किसी को पैदा किया हो या पैदा कर सकता हो । वही सबका मालिक,
पालने वाला और हक़ीक़ी हाकिम है । उसके सिवा कोई दूसरा हाकिम
नहीं, कोई दूसरा रोज़ी देने वाला नहीं, कोई दूसरा पुकार सुनने वाला नहीं,
कोई दूसरा ऐसा नहीं कि इन्सान उसकी बन्दगी कर सके । यह दुनिया न
तो अपने आप बनी है और न इसके बनाने वाले बहुत-से हैं । इसका बनाने
वाला सिर्फ़ एक अल्लाह है । वही सारे जगत् का मालिक है । यहां जो
कुछ है, उसी का है । मौत और ज़िंदगी उसी के हाथ में है । मुसीबत हो या
आराम, दुख-सुख सब कुछ उसी की ओर से मिलता है । वह देना चाहे तो
कोई रोक नहीं सकता । वह न दे तो कोई दिला नहीं सकता । वही इस

लायक़ है कि इन्सान उससे डरे, उसके ग़ज़ब से बचे, उसी के सामने हाथ फैलाए, उसी के आगे सिर झुकाए, उसकी बन्दगी करे, क्योंकि वह उसके सिवा किसी का बन्दा नहीं है । उस एक हस्ती के सिवा कोई उसका स्वामी और मालिक नहीं है । इसलिए इन्सान का हक़ीक़ी फ़र्ज़ यह है कि उसका और सिर्फ़ उसी का हुक्म माने और उसी के बताये हुए क़ानून पर चले ।

सोचिए कि यह इक़रार कितना बड़ा इक़रार है । और जब यह इक़रार मन से किया जाए तो ज़िंदगी पर इसका कैसा कुछ असर पड़ना चाहिए । जब एक शख़्स ने सोच-समझ कर यह इक़रार कर लिया कि अल्लाह के अलावा वह किसी को 'इलाह' और माबूद नहीं मानता तो यह कैसे मुम्किन है कि वह फिर भी अल्लाह के सिवा किसी और को अपना हक़ीक़ी स्वामी और मालिक माने और यह समझे कि वह मेरी बिगड़ी बना सकता है, मेरी ज़रूरतों को पूरी कर सकता है, मेरी मुसीबतें दूर कर सकता है, मेरी फ़रियादें सुन सकता है या मुझे किसी तरह का फ़ायदा या नुक़्सान पहुंचा सकता है । अब तो उसके दिल में अल्लाह के सिवा किसी का डर बैठ ही नहीं सकता, न वह किसी और पर भरोसा कर सकता है, न किसी से आस लगा सकता है, क्योंकि वह तो इक़रार इस बात का कर चुका है कि ताक़त और हुकूमत सिर्फ़ अल्लाह के लिए है और सारे इख़्तियार उसी के पास हैं । इसलिए अब वह दूसरों को नफ़ा-नुक़्सान पहुंचा सकने वाला कैसे समझ सकता है ?

इसी तरह जब मन को यह यक़ीन हो जायेगा कि अल्लाह के अलावा कोई और मालिक और माबूद नहीं है तो फिर यह नहीं हो सकता कि इन्सान अल्लाह के सिवा किसी और को पूजने लगे, किसी और के सामने भेंट (नज़र और न्याज़) चढ़ाये, किसी और के सामने हाथ बांध कर खड़ा हो, सिर झुकाए और सज्दा करे या किसी की ऐसी इज़्ज़त करे, जैसी 'मुश्रिक' (बहुदेववादी) अपनी मूर्तियों और देवताओं की करते हैं । इस इक़रार और यक़ीन के बाद वह अल्लाह के सिवा न किसी से दुआ मांगेगा न किसी की पनाह चाहेगा, न किसी को मदद के लिए पुकारेगा, क्योंकि उसकी नज़र में अल्लाह के सिवा कोई दूसरा ऐसा है ही नहीं जिसका हुक्म चलता हो, जो

दुआएं और पुकार सुनता हो, जो पनाह दे सकता हो या संकट में काम आ सकता हो।[1]

इस इक़रार और यक़ीन का एक लाज़मी नतीजा और ज़रूरी तक़ाज़ा यह भी है कि इन्सान अल्लाह के सिवा किसी दूसरे को संसार का मालिक न समझे, उसके सिवा किसी का यह हक़ न माने कि वह जो चाहे हुक्म दे सके या किसी काम से रोक दे या अपने तौर पर जैसा चाहे क़ानून बनाये, क्योंकि जब सारे संसार का मालिक अल्लाह है तो उसी को यह हक़ हासिल है कि वह अपने बन्दों को जैसा चाहे हुक्म दे और उनके लिए क़ानून बनाए और बन्दों के लिए सही तरीक़ा सिर्फ़ यह है कि वे उसी हक़ीक़ी मालिक के हुक्मों और क़ानूनों का पालन करें और किसी ऐसे क़ानून को सही न समझें जो अल्लाह के हुक्म के मुताबिक़ नहीं, बल्कि उससे आज़ाद हो कर बनाया गया हो।

इतना ही नहीं, कलिमा "ला इला-ह इल्लल्लाह" का इक़रार करने के बाद इन्सान अपनी मनमानी भी नहीं कर सकता, यह नहीं हो सकता कि जो उसका मन चाहे, वह करता फिरे। उसे अपनी इच्छा या पसन्द और नापसन्द को अल्लाह की मर्ज़ी का पाबन्द बनाना पड़ेगा। जब उसने इस हक़ को कुबूल कर लिया कि कोई चीज़ उसकी अपनी है ही नहीं, यहां तक कि उसकी अपनी जान भी हक़ीक़त में उसकी अपनी नहीं है, बल्कि अल्लाह की मिल्कियत है और उसकी सारी कुव्वतों का हक़ीक़ी मालिक अल्लाह ही है और ये सारी चीज़ें उसे अमानत के रूप में दी गई हैं तो वह अब किसी चीज़ को उसके असली मालिक अल्लाह की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ इस्तेमाल नहीं कर सकता। उसे तो ये सारी चीज़ें और शक्तियां दी ही इसलिए गई हैं कि वह उनको देने वाले ख़ुदा की मर्ज़ी के मुताबिक़ इस्तेमाल करे, क्योंकि एक दिन उसे अल्लाह के सामने हाज़िर होना है और

---

१. एक इंसान दूसरे इंसान की जो मदद करता है, उसकी मुसीबत में जो काम आता है और उसके साथ जो हमदर्दी दिखाता है वह अलग चीज़ है। यहां जिस प्रकार की मदद या पनाह का ज़िक्र किया गया है वह अलौकिक और ग़ैबी मदद है।

इस बात का जवाब देना है कि उसने उसकी दी हुई अमानतों को किस-किस तरह इस्तेमाल किया, कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि उसने इन अमानतों से अपनी ख़्वाहिशों या अपने जैसे दूसरे इन्सानों की ख़्वाहिश के मुताबिक़ काम लिया हो? यदि ऐसा हुआ तो वह अल्लाह के सामने नाफ़रमान ठहरेगा और उसे कड़ी सज़ाओं का सामना करना पड़ेगा।

"ला इला-ह इल्लल्लाह" के इक़रार के बाद हम किसी ऐसी चीज़ को पसन्द नहीं कर सकते जो अल्लाह को नापसन्द हो। हमारी सारी दौड़-धूप सिर्फ़ इसलिए होनी चाहिए कि हम अल्लाह के फ़रमांबरदार ठहरें और उसकी ख़ुशी हासिल कर लें। इस मक़सद के लिए ज़िंदगी के हर मामले में हमें सिर्फ़ एक ही बात देखनी होगी कि उसके बारे में अल्लाह ने क्या हुक्म दिया है। अख़्लाक़ में, बर्ताव में, रहन-सहन में, खाने-पीने में, कारोबार में, कमाने और ख़र्च करने में, क़ानून बनाने और हुकूमत करने में, ग़रज़ यह कि ज़िंदगी के हर मामले में हमें अल्लाह के बताये हुए रास्ते पर चलना होगा और सिर्फ़ उसी क़ानून को सही और जायज़ समझना होगा जो अल्लाह ने हमें दिया है। उसके ख़िलाफ़ जो कुछ भी होगा, ज़रूरी है कि उसे ग़लत समझें, ग़लत कहें, रद्द कर देने लायक़ ठहरायें और उसे हटा देने की कोशिश करें।

"ला इला-ह इल्लल्लाहु" के बाद दूसरा जुम्ला, जिसका हम इक़रार करते हैं, "मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह" है। इसके मायने यह हैं कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं। आप अल्लाह के उन अनगिनत पैग़म्बरों में से सबसे आख़िरी पैग़म्बर हैं, जो शुरू से ही विभिन्न देशों और जातियों में बराबर आते रहे और अल्लाह के बन्दों को उसका 'दीन' (धर्म) पहुंचाते रहे हैं। आपके ज़रिए जो दीन आया, वह अल्लाह का सबसे आख़िरी और मुकम्मल दीन है। सबके लिए है। इस दीन की जो ज़रूरत थी, वह बिल्कुल वाज़ेह है। जब अल्लाह ही इन्सान का ख़ालिक़, मालिक, पालनहार, हाकिम और माबूद है तो ज़रूरी है कि उसके अहकाम पूरे तौर से मालूम हों, उसके बन्दे इस बात को जानते हों, कि उनका रब उनसे क्या चाहता है। वे क्या करें। वह किन कामों से प्रसन्न होगा और कौन-से काम

उसे पसन्द नहीं हैं। वह रास्ता कौन-सा है कि जिस पर चल कर हम उसकी खुशी हासिल कर सकते हैं और आख़िरत में उसके इनाम और नेमतों के हक़दार बन सकते हैं और वे राहें कौन-सी हैं, जिन से बचकर चलना ज़रूरी है, ताकि उसकी नाख़ुशी और सज़ा से हम बचे रह सकें। यही ज़रूरत थी, जिसे पूरा करने के लिए अल्लाह ने अपने दूसरे पैग़म्बरों की तरह हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को भी अपना पैग़म्बर बनाया और आपके ज़रिए अपनी मर्ज़ी से हमें वाक़िफ़ कराया और इस मक़सद के लिए अपनी किताब कुरआन मजीद हमारे पास भेजी, जिसके मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ार कर आपने हमें बता दिया कि अल्लाह के बंदे को किस प्रकार ज़िंदगी गुज़ारनी चाहिए। इसलिए हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अल्लाह का रसूल मानने के मायने यह हैं कि हर उस बात की पैरवी की जाये जो अल्लाह के रसूल ने हमें बताई हो। उसी क़ानून पर चला जाये जो अल्लाह के रसूल ने हमें दिया है। उसी तरह अल्लाह की बन्दगी की जाये जिस तरह अल्लाह के रसूल ने बताई है। इस्लाम में दाख़िल होने के बाद अल्लाह के रसूल के हुक्मों पर चलने से इन्कार करना या किसी हुक्म को सही न मानना ईमान की नहीं, बेदीनी (अधर्म) की बात है। हमारा फ़र्ज़ यह है कि हम हर उस हुक्म के आगे सिर झुका दें, जिसके बारे में हमें यह मालूम हो जाये कि वह हुक्म अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने दिया है और हर उस बात से दूर रहें, जिसके बारे में मालूम हो जाये कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उससे रोका है। किसी चीज़ को उस समय तक कुबूल न करें जब तक यह न मालूम हो जाये कि वह अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के लाये हुए दीन और आपकी सुन्नत के मुताबिक़ है और उस बात को ठुकरा दें, जो उसके ख़िलाफ़ हो।

यह है कलिमा "ला इला-ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह" का मतलब और इस पर ईमान लाने के ज़रूरी तक़ाज़े। इस कलिमे को सच्चे दिल से मानने वाला इन्सान अल्लाह का सच्चा बन्दा और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का पूरा पैरो (अनुयायी) होगा और उसका पूरा जीवन अल्लाह की मर्ज़ी और उसके दीन के सांचे में ढला हुआ होगा। इसके विपरीत, इस

कलिमे पर ईमान न रखने वाला अल्लाह का बाग़ी होगा। संसार में इन दोनों तरह के इन्सानों के रास्ते अलग-अलग होंगे। इसलिए आख़िरत में दोनों के अलग-अलग अन्जाम होंगे। पहला शख़्स अल्लाह, उसके रसूल और उसके 'दीन' का वफ़ादार होने की वजह से दुनिया और आख़िरत दोनों जगह उसका रहम और बख़्शिश पाने का अधिकारी होगा ; जबकि दूसरा इन्सान बाग़ी और इन्कारी होने की वजह से उसके ग़ज़ब और उसकी सज़ा का भागीदार होगा।

२. इस्लाम

ख़ुदा के तमाम हुक्मों पर चलना हमारा बुनियादी फ़र्ज़ है। इस्लाम का यह बुनियादी अक़ीदा आपने समझ लिया और यह भी जान लिया कि जबतक यह अक़ीदा किसी के मन में न बैठ जाए और वह इसका सच्चे दिल से इक़रार न करे, वह मुसलमान नहीं हो सकता ; भले ही उसका नाम मुसलमानों का-सा ही क्यों न हो और वह किसी मुसलमान ही के घर में क्यों न पैदा हुआ हो। मुसलमान होने के लिए कलिमा "ला इला-ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह" पर सच्चे दिल से ईमान लाना ज़रूरी है। अब इस्लाम के पूरे मायने समझ लीजिए। इस्लाम के मायने हैं अल्लाह का पूरे तौर पर कहना मानना और कुफ़्र के मायने हैं अल्लाह का इन्कार, नाशुक्री और नाफ़रमानी। इस्लाम को मानने वाला और उसका इन्कार करने वाला दोनों इन्सान हैं। दोनों अल्लाह के पैदा किए हुए और उसके बन्दे हैं, परन्तु पहला इन्सान ऐसा है जो अपने मालिक और एहसान करने वाले को पहचानता है। उसे अपना मालिक और हाकिम मानता है, उसके हुक्मों पर चलता है और उसकी नेमतों पर सच्चे दिल से शुक्र अदा करता है, इसलिए वह मुसलमान है। अल्लाह उससे ख़ुश होता है, मरने के बाद उसका ठिकाना जन्नत होता है। दूसरा आदमी या तो अपने मालिक को पहचानता ही नहीं और अगर पहचानता भी है तो ग़लत रूप में पहचानता है। उसके साथ दूसरों को उसकी ख़ुदाई में शरीक मानता है, उसके हुक्मों को ठुकरा कर अपनी मनमानी करता या अपने ही जैसे दूसरे इन्सानों की ग़ुलामी अपनाता है। अपने सच्चे मालिक का हुक्म मानने से इन्कार करता है और उसकी दी हुई नेमतों को उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करके नाशुक्री का सबूत देता है। इसलिए वह 'काफ़िर' कहलाता है। अल्लाह उससे नाराज़ होता है और मरने के बाद उसका ठिकाना 'जहन्नम' होगा। यही वह बात है जो मुसलमान को काफ़िर से अलग करती है :

अब सोचने की बात यह है कि अगर कोई आदमी अपने आपको मुसलमान तो कहता है, लेकिन उसे ख़बर ही नहीं कि मुसलमान कहते किसे हैं ? और उसका मालिक उससे क्या चाहता है ? और उसकी मर्ज़ी क्या है ? उसे इसकी कोई परवाह ही नहीं कि उसके मालिक का हुक्म क्या है ? उसे मुसलमान होने की हैसियत से क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए ? तो क्या सिर्फ़ नाम, लिबास और खाने-पीने के फ़र्क़ की वजह से वह अल्लाह का फ़रमांबरदार मान लिया जायेगा ? वह उससे ख़ुश हो जायेगा ? और आख़िरत में अपनी रहमतों और नेमतों से नवाज़ेगा ? आपका दिल पुकारेगा कि ऐसा नहीं हो सकता और बात भी यही है । अल्लाह की नज़र में कोई इन्सान इसलिए ऊंचा नहीं हो जाता कि वह किसी ख़ास नस्ल या ख़ानदान से ताल्लुक़ रखता है । उसकी नज़र में तो ऊंचा वही होता है जो उसे अच्छी तरह जानता है, उसकी नाराज़ी से बचने और उसके हुक्मों पर चलने की पूरी कोशिश करता है । भले ही वह किसी के भी घर में पैदा हुआ हो । इस्लाम में यह बिल्कुल नहीं है कि कोई आदमी जन्म की वजह से तुच्छ समझा जाये । यहां तुच्छ वह है जो अल्लाह को नहीं मानता या उसके हुक्मों से मुँह मोड़ता है और उसके बताए हुए रास्ते से हटकर दूसरे रास्तों पर चलता है ।

आज मुसलमानों का क्या हाल है ? होने को तो उनकी तादाद बहुत अधिक है । दुनिया के बहुत-से देशों में उनकी हुकूमतें भी क़ायम हैं । लेकिन उन्हें वह इज़्ज़त हासिल नहीं, जो होनी चाहिए थी । होना तो यह चाहिए था कि उनका दर्जा दुनिया की दूसरी जातियों से बुलन्द होता, क्योंकि ये उस अल्लाह को मानने वाले हैं जिसके हाथ में सब कुछ है और उसने यह सही कहा है — "(हे मुसलमानो !) तुम्हारा ही बोलबाला होगा, यदि तुम हक़ीक़त में ईमान वाले हो ।" लेकिन यहां हाल दूसरा है । सोचिए, इसका सबब क्या है ? साफ़ बात यह है कि इसका सबब एक ही हो सकता है और वह यह कि जिस मुसलमान के सिर को अल्लाह के सिवा किसी और के सामने नहीं झुकना चाहिए था, आज जिधर देखिए वह अपने ही जैसे इन्सानों के आगे झुक रहा है ; जिस मुसलमान के दिल में अल्लाह

के सिवा किसी का डर नहीं होना चाहिए था, आज सैकड़ों डर उसके दिल में बैठे हुए है ; जिस मुसलमान को अल्लाह की दी हुई नेमतों के इस्तेमाल में मनमानी करने से बचना चाहिए था, उसे आज उन नेमतों को उसकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ इस्तेमाल करने में कोई झिझक नहीं होती ; जिस मुसलमान के लिए ज़िंदगी गुज़ारने का एक ही नियम और क़ानून था, जो उसके अल्लाह की ओर से आख़िरी रसूल (सल्ल०) के ज़रिए मिला था, आज उसकी ज़िन्दगी का ताल्लुक़ उस क़ानून और उस हिदायतनामे से सिर्फ़ नाम को ही रह गया है । उसका जीवन मुद्दत से अल्लाह के क़ानून के अलावा दूसरे क़ानूनों और नियमों के मुताबिक़ गुज़र रहा है । अल्लाह की आख़िरी किताब उसके पास है और ठीक उसी शक्ल में है, जिस शक्ल में वह उतरी थी । लेकिन मुसलमान ने उसे उठा कर ताक़ में रख दिया है । वह उसे पढ़ता ज़रूर है, लेकिन उसको समझने की और उसकी बातों पर अमल करने की कोशिश बहुत कम करता है । इस वजह से उसकी अमली ज़िदंगी पर अल्लाह की किताब का रंग मुश्किल ही से देखा जा सकता है । इस सूरत में मुसलमान इज़्ज़त और बड़ाई का वह मुक़ाम कैसे हासिल कर सकते हैं, जो अल्लाह ने सच्चे ईमाम वालों को बताया है । मुसलमान बेशक इस हैसियत से सबसे ख़ुश-क़िस्मत गिरोह हैं कि इस समय केवल उन्हीं के पास अल्लाह का कलाम अपनी असली शक्ल में मौजूद है, तो इस पहलू से सबसे बदनसीब गिरोह भी हैं कि अल्लाह का कलाम रखते हुए भी उसकी बरकतों से महरूम हैं । कुरआन तो इसलिए भेजा गया था कि सारे लोग उसे पढ़ें, समझें, उसके मुताबिक़ अमल करें और उसमें दिए गए हुक्मों के मुताबिक़ अपना जीवन गुज़ारें, ताकि वे आख़िरत में भी सफल हो सकें और इस दुनिया में भी सच्ची ख़ुशी और कामियाबी उन्हें हासिल हो सके । आज दुनिया में हर ओर बेचैनी है ; जिस ओर देखिए बुराई का राज्य है ; ख़ुदग़रज़ी और अन्याय का बाज़ार गर्म है ; अख़्लाक़ का ख़ात्मा हो रहा है और इन्सानियत कराह रही है और यह सब कुछ इसलिए है कि इन्सान अपने अल्लाह को भूलता जा रहा है । उसकी ज़िन्दगी ऐसे नियमों, तरीक़ों और क़ानूनों के तहत गुज़र रही है, जो उसके अपने ही बनाए हुए

हैं। इसलिए सब अधूरे और ग़लतियों से भरे हैं, और ज़िंदगी को बनाने और संवारने के बदले उसे बिगाड़ते ही जा रहे हैं। जीवन का ऐसा क़ानून तो, जिनमें ये ख़राबियां न हों और जिनमें सब इन्सानों के लिये भलाई-ही-भलाई हो, सिर्फ़ अल्लाह ही दे सकता है, जो उनका पैदा करने वाला भी है, जो उनके भले-बुरे का सही इल्म भी रखता है और उनकी कमज़ोरियों और उनकी फ़ितरी और कुदरती ज़रूरतों से अच्छी तरह वाक़िफ़ है। उसने इन्सान को कभी अपनी इस रहमत से महरूम नहीं किया और उसकी यही रहमत है, जो आज इस्लाम के नाम से हमारे पास मौजूद है। इस्लाम ज़िंदगी गुज़ारने का एक ऐसा ख़ुदाई क़ानून है, जो अपने असली रूप में संसार में लागू हो चुका है। दुनिया इसको परख चुकी है। इतिहास गवाह है कि जिस वक़्त दुनिया में यह क़ानून और निज़ाम अपनी असली शक्ल में लागू था, उस वक़्त इन्सानी ज़िन्दगी नेकियों से मालामाल थी और सुख-शान्ति से भरपूर। इस निज़ाम को क़ायम करने वाले इन्सानियत की आँखों का तारा बन गये थे; इज़्ज़त उनके लिए थी और वे सारी जातियों के सरदार और रहनुमा बना दिए गए थे। अल्लाह की यह रहमत यानी यह इस्लाम और इस्लामी निज़ामे ज़िन्दगी आज भी मौजूद है। लेकिन अफ़सोस कि उससे काम नहीं लिया जाता। उस पर ईमान रखने का दावा करने वाले उससे रहनुमाई हासिल नहीं करते। उन्हें इसकी फ़िक्र नहीं होती कि अल्लाह की इस किताब की रोशनी में उनके अक़ीदे क्या होने चाहिएं? उनका अख़्लाक़ी नज़रिया क्या और किस तरह का हो? हक़ क्या है और नाहक़ क्या है? उन्हें किस चीज़ को पसन्द करना चाहिए और किस चीज़ को नापसन्द? उनके लिए दोस्ती और दुश्मनी की बुनियादें क्या हों? दूसरों का उन पर क्या हक़ है? और उसे उन्हें किस तरह अदा करना चाहिए? वे अपनी घरेलू व ख़ान्दानी ज़िंदगी किस तरह गुज़ारें? कारोबार में किन बातों का ध्यान रखें? अपने सामाजिक मामलों से किस प्रकार निबटें? उन्हें इज़्ज़त और सरबुलन्दी किन कामों से हासिल होगी और रुस्वाई और नाकामी किन कामों का नतीजा हुआ करती है? मुसलमान होने की हैसियत से ज़रूरी था कि हम ये सारी बातें अल्लाह की किताब

से पूछते और उसके मुताबिक़ अमल करने की कोशिश करते। लेकिन हम अब ये बातें दूसरों से पूछते हैं। यहां तक कि अल्लाह का इन्कार करने वालों की पैरवी में भी कोई बुराई नहीं समझते। यह इसी का नतीजा है कि आज हम अल्लाह की सबसे बड़ी नेमत अपने पास रखने के बावजूद उसकी बरकतों से महरूम हैं। रोशनी को हमने अपने दामन में छिपा रखा है। ख़ुद भी अन्धकार में ठोकरें खा रहे हैं और दूसरों को भी रास्ता नहीं दिखाते। सोचिए ! यह कितना बड़ा ज़ुल्म है, जो हमने अल्लाह की किताब पर किया है और इस वक़्त अगर हम बेइज़्ज़त हैं तो क्या वह हमारे इसी ज़ुल्म का नतीजा नहीं है ? है, और यक़ीनी है। इसलिए यदि हम मुसीबत से छुटकारा पाना चाहते हैं, तो इसका इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं कि हम अल्लाह की किताब और उसके दीन पर ज़ुल्म करना छोड़ दें और उसकी पैरवी का हक़ अदा करने पर सच्चे दिल से तैयार हो जायें।

लेकिन इस पैरवी करने का मतलब भी अच्छी तरह समझ लीजिए। इस्लाम जिस 'दीन' (धर्म) का नाम है, वह दूसरे बहुत से धर्मों की तरह केवल कुछ रीतियों, रिवाजों और सिर्फ़ पूजा-पाठ का नाम नहीं है, बल्कि वह ऐसा दीन है जिसके तहत इन्सान की पूरी ज़िंदगी आ जाती है, जिसमें ज़िन्दगी के हर मामले के लिए रहनुमाई मौजूद है। कुरआन करीम और हदीस शरीफ़ पर नज़र डालिए तो साफ़ दिखाई देगा कि वे जहां यह बताते हैं कि सही अक़ीदे क्या हैं ? अल्लाह की इबादत किस तरह करनी चाहिए, उसके ज़िक्र, उसकी तारीफ़ और उसकी 'तसबीह' (महिमागान) की दीन में क्या अहमियत है ? इसी तरह वे यह भी बताते हैं कि इन्सान को अपनी घरेलू ज़िन्दगी किस तरह बसर करनी चाहिए ? कारोबार में किन हुदूद का ध्यान रखना चाहिए ? सामाजिक जीवन कैसा होना चाहिए ? रोज़ी कमाने और ख़र्च करने के उसूल क्या हों ? हुकूमत किस तरह बनाई और चलाई जाए ? समझौते और लड़ाई के उसूल क्या होने चाहिएं ? ग़रज़ यह है कि इन्सान की निजी और पूरी सामाजिक ज़िन्दगी और उसके सारे ही मामलों के बारे में 'किताब' और 'सुन्नत' (हदीस) में अहकाम मौजूद हैं और जैसा कि चाहिए इस ताकीद के साथ मौजूद हैं कि अल्लाह की बन्दगी

और उसकी फ़रमांबरदारी का फ़र्ज़ पूरा करने के लिए ज़रूरी है कि इन सारे ही हुक्मों पर अमल किया जाए और इनमें से किसी को भी छोड़ा न जाए और अगर ऐसा न किया गया, जानते-बूझते इन हुक्मों में से कुछ की ख़िलाफ़वर्ज़ी की गई, तो यह ईमान का रास्ता न होगा और यह एक ऐसा जुर्म है जिसकी सज़ा दुनिया में भी सख़्त होगी और आख़िरत में भी। 'मोमिन' का फ़र्ज़ यह नहीं हो सकता कि अल्लाह के हुक्मों में से जिन पर चाहे अमल करे और जिन पर चाहे अमल न करे। उसका तरीक़ा तो सिर्फ़ एक ही हो सकता है और वह यह कि जिस तरह पूरे क़ुरआन को अल्लाह की ओर से उतरी हुई किताब समझता है उसी तरह इस बात पर भी यक़ीन रखता है कि इस किताब में जो कुछ है सब-का-सब अमल करने के लिए ही है, सिर्फ़ पढ़ लेने के लिए नहीं है। और यही वह तरीक़ा है जिसे अपना कर अल्लाह की बन्दगी और उसके अहकाम पर अमल करने का हक़ अदा किया जा सकता है और मुसलमान दुनिया और आख़िरत दोनों जगह अपने अल्लाह की रहमत के हक़दार बन सकते हैं।

३. मुसलमान

अब तक जो कुछ बताया गया है उससे यह बात अच्छी तरह आपकी समझ में आ गई होगी कि मुसलमान किसी नस्ल, ख़ानदान, गोत्र या जाति का नाम नहीं है, बल्कि यह एक ख़ास अक़ीदा और ख़ास निज़ामे ज़िन्दगी अपनाने वाले शख़्स का नाम है। इस अक़ीदे का तफ़्सीली बयान तो ऊपर आ चुका है, लेकिन इस ख़ास निज़ामे ज़िन्दगी का कुछ ज़रूरी बयान अभी आपके सामने नहीं आ सका है। इसलिए आइये इसे तफ़्सील से समझ लीजिए और यह मालूम कर लीजिए कि वे बातें क्या हैं, जिनका एक मुसलमान के अमल और बर्ताव में पाया जाना ज़रूरी है।

यह तो आप जान चुके हैं कि अल्लाह की इबादत से इन्कार कर देने का नाम 'कुफ़्र' है और इस्लाम यह है कि इन्सान अल्लाह का फ़रमांबरदार हो, क्योंकि इस्लाम के माने ही अल्लाह की फ़रमांबरदारी है। इस फ़रमांबरदारी का बुनियादी तक़ाज़ा यह है कि हर उस तरीक़े या क़ानून या हुक्म को ग़लत और ठुकराने के लायक़ समझे जो अल्लाह की भेजी हुई हिदायत के ख़िलाफ़ हो। अल्लाह के सिवा किसी को क़ानून बनाने का हक़दार न माने और उन तमाम हुक्मों को मानने से इन्कार कर दे, जो अल्लाह की फ़रमांबरदारी के तहत न हों। कुरआन साफ़-साफ़ कहता है

> "जो लोग अल्लाह की उतारी हुई हिदायत के मुताबिक़ फ़ैसला न करें, वे हक़ीक़त में काफ़िर हैं।" —५ : ४४

इसका साफ़ मतलब यह है कि ज़िन्दगी में जब भी कोई सवाल आपके सामने आए तो उसका जवाब अल्लाह की उतारी हुई हिदायत में मालूम कीजिए, फिर उसी के मुताबिक़ अमल भी कीजिए। ज़िन्दगी के हर मामले में यह देखना ज़रूरी है कि अल्लाह की किताब और उसके रसूल की सुन्नत इस बारे में क्या कहती है? जो शख़्स ऐसा करता है और ऐसे हर मौक़े पर किताब और सुन्नत का तरीक़ा अपनाता है, उसी का तरीक़ा इस्लाम का

तरीक़ा होता है। एक मुसलमान को ऐसा ही करना चाहिए और जो कोई ऐसा नहीं करता, बल्कि अल्लाह के बनाए हुए तरीक़ों को छोड़ कर ऐसे तरीक़े अपनाता रहता है, जो या तो इन्सान की अपनी तुच्छ इच्छा के सुझाए हुए होते हैं या बाप-दादा के रीति-रिवाज की पैरवी का नतीजा होते हैं या फिर इन्सान की नापुख़्ता अक़्ल के गढ़े हुए होते हैं, तो यह हक़ीक़त में कुफ़्र का तरीक़ा है और एक मुसलमान इसे कभी नहीं अपना सकता।

मुसलमान तो कहते ही उसे हैं, जो सिर्फ़ अल्लाह का हुक्म माने और उसके हुक्म के मुक़ाबले में न अपने जी की कोई बात सुने, न नस्ली रिवायतों और जाति की हिमायत करे और न किसी ताक़त और हुकूमत को देखे; क्योंकि वह बन्दा अपने अल्लाह का है और उसे बन्दगी अपने उसी अल्लाह की करनी है, न वह किसी और का बन्दा है और न किसी और की उसे बन्दगी करनी है। अल्लाह कुरआन में कहता है—

> "हे नबी ! कहो : हे किताब वालो ! आओ एक ऐसी बात की ओर जो हमारे और तुम्हारे बीच समान है। (यानी जो तुम्हारे नबी भी बता गए हैं और अल्लाह का नबी होने की हैसियत से मैं भी वही बात कहता हूं।) वह बात यह है कि हम अल्लाह के सिवा किसी और की बन्दगी न करें, न उसके साथ किसी को शरीक करें और न हम में से कोई अल्लाह के सिवा किसी दूसरे को अपना रब बनाए और यदि वे इस बात से मुंह मोड़ लें, तो उनसे कहना गवाह रहो, हम तो मुस्लिम हैं (अल्लाह के फ़रमांबरदार हैं, यानी हम इन तीनों बातों को मानते हैं)।" — ३ : ६४

> "क्या वे अल्लाह की फ़रमांबरदारी के अलावा किसी और की फ़रमांबरदारी करना चाहते हैं ? हालांकि धरती और आसमान की हर चीज़ चाहे-ना-चाहे उसी की फ़रमांबरदारी कर रही है और सबको उसी की ओर पलटना है।" —३ : ८३

इन दोनों आयतों में एक ही बात बयान की गई है, यानी हक़ीक़ी दीन अल्लाह की फ़रमांबरदारी है। अल्लाह की फ़रमांबरदारी के मायने यह नहीं हैं कि बस पांच वक़्त हम उसके सामने सज्दा कर लें, बल्कि उसकी

फ़रमांबरदारी यह है कि हम उसकी इबादत करें, जिस चीज़ से उसने रोका है, उसे हरगिज़ न करे और जिस काम का उसने हुक्म दिया है उसे ज़रूर करें। हर वक़्त, हर मामले में यही देखना चाहिए कि अल्लाह का हुक्म क्या है? उसका हुक्म मालूम हो जाने के बाद यह कभी न देखें कि हमारा मन क्या कहता है? हमारी अक़्ल क्या कहती है और फलां आदमी क्या कहता है? हमारे बाप-दादा क्या कहते थे? हमारे ख़ानदान का रिवाज क्या है? वक़्त किस चीज़ को पसन्द कर रहा है? दूसरे लोगों का इस बारे में क्या ख़्याल है? वरना अगर हम अल्लाह के हुक्म को छोड़कर किसी और की बात मान लेंगे तो इसके मायने यह होंगे कि हमने अमली तौर पर उसे ख़ुदा का साझी बना लिया और किसी-न-किसी दर्जे में उसे वह मुक़ाम दे दिया, जो मुक़ाम अल्लाह का है। यह इतनी भयानक बात है कि इसके बाद इन्सान सीधे तबाही के गड्ढे में जा गिरता है।

इन्सान को अल्लाह की बन्दगी से रोकने वाली और गुमराह करने वाली बड़ी-बड़ी चीज़ें तीन हैं। जो शख़्स मुसलमान रहना और अल्लाह की बन्दगी का हक़ अदा करना चाहता है, उसके लिए ज़रूरी है कि वह इन तीनों चीज़ों को अच्छी तरह समझे और इनकी ओर से पूरी तरह चौकन्ना रहे। वे चीज़ें ये हैं—

१. अपनी बन्दगी।

२. बाप-दादा या नस्ल और ख़ानदान वालों की बन्दगी।

३. दुनिया के उन लोगों की बन्दगी, जिन्हें धन-दौलत की वजह से बड़ा समझा जाता है या जिन्हें लोग अपना पेशवा या लीडर बना लेते हैं।

अपनी बन्दगी के बारे में अल्लाह कहता है—

> "उससे बढ़कर गुमराह कौन होगा, जिसने अल्लाह की रहनुमाई के बदले अपनी (तुच्छ) इच्छा की पैरवी की। ऐसे ज़ालिम लोगों को अल्लाह रास्ता नहीं दिखाता।" — २८:५०

> "क्या तुमने उस आदमी के हाल पर ग़ौर नहीं किया जिसने अपनी ख़्वाहिश को ही अपना माबूद बना लिया है? क्या तुम ऐसे

आदमी के ज़िम्मेदार बन सकते हो, क्या तुम समझते हो कि इनमें से बहुत-से लोग सुनते या समझते हैं? हरगिज़ नहीं, ये तो जानवरों की तरह हैं, बल्कि उनसे भी गए-गुज़रे।"

— २५ : ४३-४४

ये आयतें बताती हैं कि जो आदमी अपनी ख़्वाहिशों की पैरवी करता है, वह उसे हक़ीक़त में अपना ख़ुदा बना लेता है। ज़ाहिर है कि अपनी ख़्वाहिशों का ग़ुलाम बन जाने के बाद अल्लाह का बन्दा बनना या बाक़ी रहना मुम्किन नहीं रहता। ऐसा शख़्स तो हर वक़्त यही देखेगा कि धन मुझे किस तरह मिलता है, आदर और इज़्ज़त और शोहरत पाने की राह कौन-सी है? आनन्द और सुख किस काम से प्राप्त कर सकते हैं। इन चीज़ों की ख़्वाहिश जिन तरीक़ों से भी पूरी होती दिखाई देगी, वह उन्हीं को अपना लेगा। भले ही अल्लाह ने उनसे कितना ही क्यों न रोका हो। इसी तरह जिन कामों के करने से उसकी यह ख़्वाहिश पूरी न होती होगी, उन्हें वह हरगिज़ न करेगा, भले ही अल्लाह ने उनकी कितनी ही ताकीद क्यों न की हो। ऐसे इन्सान के बारे में इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है कि उसने ख़ुद अपने को अपना माबूद बना लिया है।

बाप-दादा या नस्ल और ख़ानदान की बन्दगी का हाल भी यही है। कितने ही लोग आपको ऐसे मिलेंगे जो एक ख़ास रास्ते पर इसलिए चल रहे हैं कि उनके बाप-दादा ऐसा ही करते थे। उन्होंने ख़ुद कभी नहीं सोचा कि क्या ठीक है और क्या ग़लत। उनके लिए यह बात काफ़ी है कि उनके बाप-दादा ऐसा ही किया करते थे। ऐसे लोगों के सामने यदि अल्लाह का कोई ऐसा हुक्म आता है, जो उनके बाप-दादा के तौर-तरीक़ों से टकराता है, तो वह उसे छोड़ देते हैं और कहते हैं कि हम तो वही करेंगे जो हमारे बुज़ुर्गों से होता आया है। कोई वजह नहीं कि ऐसे शख़्स को अल्लाह का बन्दा माना जाए। वह तो अपने बाप-दादा और ख़ानदान का बन्दा है, अल्लाह का बन्दा कब है? क्योंकि ऐसे लोगों के बारे में अल्लाह कहता है—

"और जब उनसे कहा जाता है कि जो दीन (धर्म) अल्लाह ने भेजा

है, उसकी पैरवी करो, तो वे कहते हैं कि हम तो उस तरीक़े की पैरवी करेंगे जो हमें अपने बाप-दादा से मिला है । क्या वे उन्हीं की पैरवी किए जायेंगे, चाहे वे कुछ न समझते हों, न उन्हें सीधा रास्ता मिला हो ।" — २ : १६०

"और जब उनसे कहा जाता कि आओ इस चीज़ की ओर जो अल्लाह ने उतारी है और रसूल (के तरीक़े) की ओर, तो उन्होंने कहा कि हमारे लिए तो वही तरीक़े हैं जिन पर हमने अपने बाप-दादा को पाया है । क्या ये बाप-दादा की ही पैरवी किए जायेंगे, चाहे उनको किसी बात का भी इल्म न रहा हो और न वे सीधे रास्ते पर रहे हों ।" — ५ : १०४

बाप-दादा की यह अन्धी पैरवी ऐसी गुमराही है, जिसमें क़रीब हर ज़माने के जाहिल लोग गिरफ़्तार रहे हैं और इसी चीज़ का इन्सान को अल्लाह के रसूल की तालीम से दूर रखने में बड़ा हिस्सा रहा है । कुरआन में अगले नबियों के जिन क़िस्सों का ज़िक्र किया गया है, उनमें यह बताया गया है कि तक़रीबन हर नबी की जाति ने अपने नबी की दावत को झुठलाते हुए यही बात कही कि हम तुम्हारी बातें कैसे मान लें, तुम जो कुछ कहते हो वह उसके ख़िलाफ़ है, जो हमारे बाप-दादा से चला आया है । ऐसे लोगों के जवाब में फ़ितरतन हमेशा एक ही बात कही गई और वह यह कि देखो ! बन्दगी और ग़ुलामी तो एक ही की हो सकती है, या तो अल्लाह की बन्दगी करो या फिर अपने बाप-दादा की बन्दगी करते रहो । एक साथ दोनों की बन्दगी नहीं की जा सकती । अब सोच लो कि बन्दगी का हक़दार कौन है ? अल्लाह या तुम्हारे बाप-दादा, जो स्वयं भी उसी तरह अल्लाह के पैदा किए हुए हैं जिस तरह कि तुम हो । तुम यदि सीधी राह पर चलना और अल्लाह की बन्दगी करना चाहते हो तो सब बातों को छोड़कर उस हुक्म को कुबूल कर लो जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) अल्लाह की ओर से लेकर आए हैं ।

दीनी पेशवाओं और सरदारों की बन्दगी राहे हक़ की तीसरी बड़ी रुकावट है । बहुत-से लोग इस तरह सोचते हैं कि फ़लां शख़्स बहुत बड़ा

आदमी है, उसकी बात सही होगी, फ़्लां आदमी बड़ा मालदार और इज़्ज़त और शान वाला है उसे ज़रूर मानना चाहिए, नहीं तो दुनिया का काम न चल सकेगा। फ़्लां शख़्स ताक़त और हुकूमत वाला है, उसका कहना ज़रूर मानना चाहिए, नहीं तो मेरी ख़ैर नहीं; फ़्लां साहब बड़े पहुंचे हुए हैं, उनका कहना न माना तो वे बददुआ दे देंगे और मैं तबाह हो जाऊंगा। फ़्लां क़ौम बड़ी तरक़्क़ी कर रही है, उसके तरीक़े अपनाने चाहिए, नहीं तो हम पीछे रह जायेंगे। जब कोई शख़्स इस तरह सोचने लगता है तो उस पर हिदायत का रास्ता बन्द हो जाता है और वह अल्लाह की बन्दगी की ओर आ ही नहीं सकता, जैसा कि अल्लाह कहता है—

> "ज़मीन के वासियों में अक्सर ऐसे लोग हैं कि अगर तुमने उनका कहना माना तो वे तुम्हें राह से भटका देंगे।" — ६ : ११६

ये तीनों चीज़ें, जिन पर अभी रोशनी डाली गयी, जब तक मौजूद होंगी इन्सान कभी सीधे रास्ते पर नहीं आ सकता। इसलिए सीधा रास्ता पाने और उस पर मज़बूती से जम जाने के लिए ज़रूरी है कि इन्सान का मन तीनों बीमारियों से पाक हो। सीधी राह तो सिर्फ़ एक ही है, और वह यह कि इन्सान अल्लाह के सिवा किसी का बन्दा और रसूल के सिवा किसी का पैरो न हो। वह सच्चे दिल से इस बात पर यक़ीन रखता हो कि अल्लाह और उसके रसूल ने जो कुछ बताया है वही सच है, उसके ख़िलाफ़ जो कुछ है वह ग़लत है। उसे यदि आदर, इज़्ज़त और सरबुलन्दी मिल सकती है तो सिर्फ़ अल्लाह और उसके रसूल की फ़रमांबरदारी ही से मिल सकती है। ज़िंदगी के किसी मामले में अगर वह उसके सिवा कोई दूसरा रास्ता अपनाएगा तो वह उसके लिए दुनिया में ख़राबी और आख़िरत में, तबाही का सबब बन जायेगा। उसे जब किसी चीज़ के बारे में यह मालूम हो जाए कि अल्लाह का यह हुक्म है तो फिर उसके आगे फ़ौरन सिर झुका दे। उसके ख़िलाफ़ कुछ करने की बात सोचे तक नहीं। चाहे दुनिया कितना ही बुरा माने। अपने और पराये कुछ भी कहें, बड़ों के माथे पर चाहे कितने बल पड़ जाएं, सबको उसका जवाब यही होगा कि मैं सिर्फ़ अल्लाह का बन्दा हूं, अपना या अपने ख़ानदान या किसी लीडर और पेशवा का या

किसी हाकिम और बादशाह का बन्दा नहीं हूं । सीधी राह और टेढ़ी राह, अल्लाह की सच्ची बन्दगी और झूठी बन्दगी के फ़र्क़ और उनके मतलब समझने के लिए क़ुरआन की ये आयतें ग़ौर से पढ़िए—

"हमने हक़ और नाहक़ को खोल देने वाली आयतें उतार दी हैं । अल्लाह जिसको चाहता है इन आयतों के ज़रिए सीधी राह दिखा देता है । लोग कहते हैं कि हम अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाये हैं और हमने इताअत क़ुबूल कर ली है, फिर इसके बाद उनमें से कुछ लोग (इताअत से) मुंह मोड़ लेते हैं—ऐसे लोग ईमान वाले नहीं हैं । उन्हें जब अल्लाह और उसके रसूल की ओर बुलाया जाता है, ताकि वे उनके बीच फ़ैसला करें, तो उनमें से कुछ लोग मुंह मोड़ लेते हैं । हां ! जब बात उनके मतलब की हो तो हुक्म मानते और क़ुबूल करते चले जायेंगे । क्या इन लोगों के मन में मर्ज़ है ? या ये शुब्हे में पड़े हुए हैं ? या उनको यह डर है कि अल्लाह और उसका रसूल उनका हक़ मार लेंगे ? नहीं, ये लोग हक़ीक़त में अपने-आप पर ज़ुल्म करने वाले हैं । हक़ीक़त में जो ईमान वाले हैं, उनका तरीक़ा तो यह है कि जब उन्हें अल्लाह और उसके रसूल की ओर बुलाया जाए, ताकि वह उनके बीच फ़ैसला कर दे, तो वे कहें : हमने सुना और मान लिया । ऐसे ही लोग कामियाबी हासिल करने वाले हैं, और जो लोग अल्लाह और उसके रसूल का हुक्म मानेंगे, और अल्लाह से डरते और उसकी नाफ़रमानी से बचते रहेंगे, बस वही कामियाब होंगे ।"

—२८: ४६-५१

यह है मोमिन की सच्ची तस्वीर । इससे मालूम हुआ कि मुसलमान वह है जो अपने आपको अल्लाह की किताब और उसके रसूल की इताअत के हवाले कर दे । जो हुक्म वहां से मिले उसके आगे सिर झुका दे, उसके मुक़ाबले में न वह अपने दिल की सुने, न घराने वालों की और न दुनिया वालों की, यह बात जिस आदमी में पैदा हो जाए वह, 'मुस्लिम' , और 'मोमिन' है ।

४. मुसलमान की ज़िम्मेदारी

इस्लाम क्या है ? और मुसलमान किसे कहते हैं ? यह बात हम जान चुके हैं। आइए, अब मालूम करें कि मुसलमान होने के अमली तक़ाज़े क्या हैं ? कलिमा 'ला इला-ह इल्लल्लाह, मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' पर ईमान आदमी पर क्या ज़िम्मेदारियां डालता है ? और अल्लाह की पूरी फ़रमांबरदारी और बन्दगी का अहद करने वालों की ज़िंदगी कैसी होनी चाहिए ? इस सवाल का इतना जवाब तो पिछली बातों ही से मिल जाता है कि मुसलमान को अल्लाह और उसके रसूल के हुक्मों पर पूरे तौर से अमल करना चाहिए यानी उसकी पूरी ज़िंदगी क़ुरआन और सुन्नत के सांचे में ढली हुई हो। इस सवाल का बाक़ी जवाब यह है कि मुसलमान की ज़िम्मेदारी अपनी ज़िंदगी को ख़ुदा के हुक्मों के सांचे में ढाल लेने के साथ कुछ और भी है, जिसके अदा किए बिना वह अपने मुसलमान होने के तक़ाज़ों को हरगिज़ पूरा नहीं कर सकता और ऐसी हालत में उसकी दुनिया और आख़िरत दोनों ख़तरे में रहेंगी। यह ज़िम्मेदारी क्या है ? इसे मालूम करने के लिए अल्लाह का फ़रमान सुनिए—

> "और इसी तरह हमने तुम्हें एक बेहतरीन गिरोह बनाया ताकि तुम दुनिया के लोगों पर गवाह हो और रसूल तुम पर गवाह हो।"
>
> — २ : १४३

इस आयत से मालूम हुआ कि मुसलमान संसार की दूसरी जातियों और गिरोहों से भिन्न बिल्कुल एक अलग तरह का गिरोह है। उन्हें अल्लाह ने एक ऐसी जमाअत (उम्मत) बनाया है, जिसका मक़सद दूसरे तमाम लोगों के सामने अल्लाह के दीन (धर्म) की गवाही ठीक उसी तरह देना है जिस तरह कि अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने ख़ुद उनके सामने दी थी, यानी ऐसी गवाही जिसके नतीजे में अल्लाह का भेजा हुआ दीन (धर्म) पूरी तरह निगाहों के सामने आ जाए और फिर कल क़ियामत के दिन अल्लाह

की अदालत में लोग यह उज़्र या शिकायत न कर सकें कि हमें इस दीन (धर्म) की ख़बर ही नहीं थी। हमारे सामने इसे खोल कर कभी रखा ही नहीं गया था। इसलिए, हम इसकी पैरवी करते तो कैसे करते !

यह ज़िम्मेदारी, जो अल्लाह ने इस गिरोह पर डाली है, बड़ी भारी और अहम ज़िम्मेदारी है। इसकी अहमियत को समझने के लिए नबियों के आने और उनके ज़रिए अल्लाह के भेजे हुए पैग़ाम के मामले पर ज़रा तफ़्सील से निगाह डालिए। तमाम आसमानी किताबें इस बात को वाज़ेह करती हैं कि दुनिया में जितने इन्सान पैदा हुए हैं, या आइन्दा पैदा होंगे, वे सब हश्र के मैदान में अल्लाह के सामने हाज़िर होंगे और उनसे यह पूछा जाएगा कि वे दुनिया में क्या करके आए हैं ? यह वक़्त उनके लिए बड़ा बुरा और परेशानी का होगा, जो उस वक़्त के आने और इस सवाल के किए जाने की परवाह ही न करते होंगे और जिन्होंने दुनिया में अपना जीवन अल्लाह की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ बसर किया होगा। यह बुरा वक़्त और बुरा नतीजा है, जिससे खबरदार करने के लिए अल्लाह पहले ही दिन से अपने पैग़म्बरों और किताबों को भेजता रहा है। सबसे पहले उसने हज़रत आदम (अलै०) को अपना पैग़म्बर बनाया और उन्हें अच्छी तरह बता दिया कि अल्लाह किस चीज़ को पसन्द करता है और किस चीज़ को नापसन्द। फिर इसके बाद वह बराबर अपने पैग़म्बर भेजता रहा, जो अल्लाह के बन्दों को यह बताते रहे कि पैदा करने वाले की मर्ज़ी क्या है ? और ज़िंदगी का वह सही तरीक़ा कौन-सा है, जो उसे पसन्द है ? उन्हें क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए ? और आख़िरत में उन्हें नजात और अल्लाह की .ख़ुशी किस तरह हासिल होगी ? इस तरह अगर पैग़म्बरों का फ़र्ज़ यह था कि वे इन्सानों को ठीक-ठीक बता दें कि अल्लाह क्या चाहता है और क्या नहीं चाहता, तो आम इन्सानों की ज़िम्मेदारी यह थी कि वे अल्लाह के उन पैग़म्बरों पर ईमान लाकर उनके बताए हुए तरीक़े को अपनायें। क़ुरआन कहता है कि क़ियामत के दिन अपनी-अपनी ज़िम्मेदारियों के बारे में दोनों ही से सवाल होगा। पैग़म्बरों से पूछा जाएगा कि उन्होंने अपना काम किस तरह किया और लोगों तक उनके मालिक के हुक्म पूरी तरह और सही

तरीक़े से पहुंचा दिए थे या नहीं? और दूसरे लोगों से पूछा जाएगा कि तुमने हमारे इन पैग़म्बरों की दावत के जवाब में क्या रवैया अपनाया था। क़ुरआन में है—

"जिन लोगों के पास रसूल भेजे गए, हम उनसे ज़रूर पूछेंगे (कि उन्होंने उनके पैग़ाम को क़ुबूल किया या नही) और हम रसूलों से भी पूछेंगे (कि उन्होंने पैग़ाम को किस हद तक पहुंचाया?)"

—७:६

यही वजह है कि नबियों ने (उनपर अल्लाह की सलामती और रहमत हो) अपनी ज़िम्मेदारी को पूरे तौर पर महसूस किया और लोगों तक हक़ पहुंचाने में कोई कसर उठा नहीं रखी। यही ज़िम्मेदारी सबसे आख़िर में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर डाली गई थी और आपने इसे पूरा करने का हक़ अदा कर दिया। अपने आख़िरी हज़ के मौक़े पर अरफ़ात के मैदान में आपने लोगों से यह सवाल किया था— "बताओ मैंने हक़ तुम तक पहुंचा दिया या नहीं?" और जब लोगों ने एक आवाज़ होकर इसका इक़रार किया कि हक़ीक़त में आपने अल्लाह का दीन (धर्म) हम तक पहुंचा दिया, तो आपने आसमान की ओर मुंह करके कहा— "हे अल्लाह! तू गवाह रह। मैंने तेरा दीन (धर्म) तेरे बन्दों तक ठीक-ठीक पहुंचा दिया है।" फिर इसी मौक़े पर आपने लोगों को यह ताकीद भी की कि देखो जो कुछ मैंने तुम्हें पहुंचाया है, तुम उसे दूसरों तक पहुंचा देना।

यह हक़ की गवाही की वह बड़ी ज़िम्मेदारी है, जिसे मुस्लिम उम्मत को पूरा करना है और क़ियामत तक पूरा करना है। इसलिए मुसलमान का बुनियादी फ़र्ज़ इस ज़िंदगी में सिर्फ़ यह है कि अल्लाह का जो दीन (धर्म) और नबी (सल्ल०) की जो तालीम उस तक पहुंची है उसे वह दूसरों तक पहुंचाता रहे, और ठीक-ठीक पहुंचाता रहे, जिस तरह अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने उस तक पहुंचाया था। इसी का नाम अल्लाह के दीन की गवाही देना है।

हक़ की गवाही देने का फ़र्ज़ पूरा करने के लिए दो काम ज़रूरी हैं। एक तो यह कि हम अपनी ज़ुबान और क़लम से काम लेकर दुनिया के सामने

उस हक़ को खोल-खोल कर बयान कर दें, जो अल्लाह की किताब और रसूल (सल्ल०) की सुन्नत से हम तक पहुंचा है। इस काम के लिए उन सभी ज़रियों और साधनों को अपनाना होगा जो दुनिया में इस वक़्त अपनी बात पहुंचाने के लिए अपनाए जाते हैं और जिन्हें अपनाना हमारे लिए जायज़ हो, यहां तक कि दीन की तमाम हिदायतें साफ़ तौर से लोगों के सामने आ जायें और वे समझ जाएं कि अल्लाह का यह दीन (धर्म) ही हक़ है। यही ज़िंदगी के सारे मामलों में हमारा रहनुमा बन सकता है और इसी पर चलने के नतीजे में वे आख़िरत में अल्लाह की खुशी हासिल कर सकते हैं।

दूसरा काम अपने अमल की गवाही का है। इसका मतलब यह है कि हम अपनी ज़िंदगी में उन हिदायतों पर अमल करके दिखाएं, जिन्हें हम हक़ कहते हैं। हमारा बर्ताव, हमारा अख़्लाक़, हमारा मामला, हमारा लेन-देन, ग़रज़ यह कि हमारी ज़िंदगी का एक-एक काम अल्लाह के दीन का अमली नमूना बन जाये, ताकि दुनिया इस्लाम को सिर्फ़ तक़रीरों और तहरीरों के ज़रिए ही न समझे, बल्कि हमारे अमल से भी समझे। वह अपनी आंखों से देख ले कि इस दीन को अपनाने से कैसे अच्छे इन्सान बनते हैं? कैसा अच्छा समाज सामने आता है? कितनी साफ़-सुथरी तहज़ीब जन्म लेती है? साइंस, टेक्नालोजी, अदब और आर्ट में कैसी तामीरी और इन्सानों के लिए मुफ़ीद तरक़्क़ी होती है? इन्साफ़, प्रेम और हमदर्दी का कैसा अच्छा माहौल पैदा होता है? नेकी और अख़्लाक़ किस तरह परवान चढ़ते और बुराई किस तरह मुंह छिपाए फिरती है? इस सूरत का पैदा हो जाना और संसार की नज़र के सामने आ जाना इस्लाम के हक़ होने का ऐसा भारी सबूत होगा, जिसका इन्कार आसानी से नहीं किया जा सकता।

ज़ुबान और क़लम की गवाही के साथ जब अमल की गवाही भी दे दी जाए तब जाकर हक़ की गवाही देने की वह भारी ज़िम्मेदारी पूरी हो सकेगी, जो मुस्लिम उम्मत पर डाली गई है और तभी वह अपने फ़र्ज़ से बरी हो सकेगी। इसके बाद भी जो लोग हक़ को क़ुबूल न करेंगे और बातिल से

चिपटे रहेंगे, वे अपने इस रवैये के ख़ुद ज़िम्मेदार होंगे। मुस्लिम उम्मत पर इसकी कोई ज़िम्मेदारी न होगी और आख़िरत में अल्लाह के आगे यह गवाही दे सकेगी कि हम जो कुछ पहुंचा सकते थे वह इन लोगों तक पहुंचा दिया था। अब अगर इन्होंने क़ुबूल नहीं किया तो क़ुसूर इनका है, हमारा नहीं। किन्तु अगर यह उम्मत अपनी इस ज़िम्मदारी को अदा करने की ओर से ग़ाफ़िल रही तो फिर इन्साफ़ की बात यह है कि गुमराह लोगों की गुमराही की ज़िम्मेदारी में उसे भी शरीक ठहराया जाए और जब ये लोग कल अल्लाह की अदालत में यह उज़्र पेश करेंगे कि हमें तो कुछ मालूम हीं न हो सका कि अल्लाह का दीन (धर्म) क्या था? उस वक़्त उससे अल्लाह की ओर से इसके बारे में पूछा जाएगा, जिसने कि उसे दुनिया में अपने दीन का अमीन और उसकी तब्लीग़ का ज़िम्मेदार बनाया था। ग़ौर कीजिए, अगर मुस्लिम उम्मत से अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करने में कोताही हुई तो इसका अन्जाम क्या होगा? लेकिन यहां 'अगर' का भी कोई सवाल नहीं है। इस वक़्त तो मुस्लिम उम्मत की बेपरवाही और कोताही एक ठोस हक़ीक़त बन कर सबके सामने मौजूद है। हक़ की गवाही देने की ज़िम्मेदारी का एहसास रखने वाला दिल यह देख कर कांप उठता है कि जिस उम्मत को अल्लाह के दीन (धर्म) की क़ौली और अमली गवाही देने के लिए आगे होना चाहिए था, वह आम तौर से उसके ख़िलाफ़ गवाही दे रही है। उसकी बहुत बड़ी तादाद ज़िंदगी के मैदान में लगभग उन्हीं राहों पर भागी चली जा रही है जिन पर दूसरी जातियां चल रही हैं। आम तौर से हमारा अमल तो अमल, हमारा क़ौल भी इस्लाम की सच्ची और पूरी गवाही देने में बुरी तरह नाकाम है। बेशक मुस्लिम उम्मत में नेक और दीनदार लोगों का बिल्कुल अकाल भी नहीं है। लेकिन सवाल कुछ फ़ीसदी लोगों का नहीं, बल्कि इज्तिमाई तौर पर पूरी उम्मत का है और उम्मत का इज्तिमाई तौर से जो हाल है वह सब पर ज़ाहिर है। अख़्लाक़ और बर्ताव में हमारी हालत दूसरों से कम बुरी नहीं है। अक़ीदे बेजान और जहालत की भेंट चढ़ चुके हैं। दीन की पैरवी अगर है भी तो कुछ रिवाजों तक महदूद है। कहने को तो मुसलमान हैं, परन्तु ऐसे मुसलमान जो झूठ बोल

सकते हैं, चोरी कर सकते हैं, ज़ुल्म कर सकते हैं, धोखा दे सकते हैं, दी हुई ज़ुबान से फिर सकते हैं, दंगा कर सकते हैं, बेशर्मी के सारे काम कर सकते हैं। उनके रहन-सहन में, रीति-रिवाज में, त्योहारों और उर्सों में, जलसों और जलूसों में हर वह बुराई और फ़ालतू चीज़ें देखी जा सकती हैं, जिन्हें मुसलमान के माथे पर कलंक का टीका ही कहा जा सकता है। ग़रज़ यह कि निजी और इज्तिमाई ज़िंदगी के एक-एक पहलू को बिगाड़ कर रख दिया गया है। सोचिये, यह सूरतेहाल किस दर्जा भयानक है! घरों, मुहल्लों, दुकानों और बाज़ारों से लेकर सियासत के मैदान और राज महलों तक और मदरसों और ख़ानक़ाहों से लेकर इबादतगाहों तक, कहीं भी तो इस्लाम की अस्ली तस्वीर दिखाई नहीं देती। जिन देशों में मुसलमान अक़ल्लियत में हैं और हुकूमत दूसरों को हासिल है, वहां का तो सवाल ही क्या, जहां मुसलमानों की अपनी हुकूमतें हैं, वहां भी उन्होंने इस्लामी क़ानूनों को छोड़कर ग़ैर-इस्लामी क़ानूनों को अपना रखा है। इन हालात हो देखते हुए इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है कि मुसलमानों ने दुनिया के सामने अल्लाह का दीन पेश करने के बदले उसे छिपाया है और दुनिया अगर ख़ुदाई हिदायत से महरूम है तो इसकी ज़िम्मेदारी में ख़ुद उनका भी हिस्सा है।

दीने हक़ की गवाही देने के सिलसिले में हम मुसलमानों ने जो बेपरवाही और नालायक़ी दिखाई है, वह लगभग वैसी ही है जैसी उस पुलिस की होती है जो लोगों की जान और उनके माल की हिफ़ाज़त के बदले ख़ुद चोरी और हत्या और फ़साद पर उतारू हो चुकी हो। ज़ब हमारी हालत यह है तो इंसाफ़ का तक़ाज़ा यह होगा कि अल्लाह का भी मामला हमारे साथ इसी के मुताबिक़ हो। अतः ऐसा ही हो रहा है। हमारे इसी भारी जुर्म की सज़ा भी भारी रखी गई है। इस सज़ा का एक हिस्सा तो वह है जो हमें इस दुनिया में रुसवाई और ग़ुलामी के रूप में मिल ही रहा है। इसका दूसरा हिस्सा वह होगा जिसका हमें क़ियामत में सामना करना पड़ेगा और ज़ाहिर है असल फ़ैसला तो वहीं होगा और वहां की पकड़ बड़ी सख़्त होगी।

इस सज़ा और इस पकड़ से बचने का रास्ता सिर्फ़ एक ही है और वह यह कि हमें अपनी इस ग़लती का एहसास हो जाए और हम सज़ा से बचने की फ़िक्र करें । हमने मुद्दत से अपनी ज़िम्मेदारी को भुला रखा है, हम अपनी ज़िंदगी के मक़्सद से बेपरवाह हो गए हैं और इसका फल भोग रहे हैं । और जब तक इस ज़िम्मेदारी को निभाने के लिए हम तैयार न होंगे हमारा मुस्तक़बिल तारीक ही रहेगा । उसे यदि रोशन बनाना हो तो ज़रूरी है कि हम अपने दीन की ओर पलटें, उससे आधा, तिहाई नहीं, पूरा ताल्लुक़ क़ायम करें, उसे सचमुच अपना दीन बनाएं, अपनी ज़िंदगी के हर हिस्से को उसकी तालीमात के रंग मे रंग डालें, अपने घरों में, अपने ख़ानदान में, अपने समाज में, अपने मदरसों में, अपने अदब और सहाफ़त में, अपने कारोबार और मआशी मामलों में, अपनी अन्जुमनों और जमाअतों में और जहां-जहां मुम्किन हो—वहां अपनी हुकूमतों में भी—उसके अहकाम पर अमल करें और अपनी करनी और कथनी से दुनिया के सामने उस की सच्ची गवाही दें और इस बात को अच्छी तरह महसूस करें कि इसकी गवाही देने की ज़िम्मेदारी को भुला देने के बाद हमारी ज़िंदग़ी का कोई मक़्सद नहीं रहता और हमारा वजूद बेफ़ायदा होकर रह जाता है । ज़िम्मेदारी के एहसास की मांग यह है कि वे अपनी सारी दिलचस्पियों, कोशिशों और चिन्ताओं का ख़ास मर्कज़ इसी हक़ की गवाही के काम को बना लें, जो कि उनकी ज़िंदगी का असली मक़्सद है और फिर हर उस काम से कट जायें, जो इस मक़्सद के ख़िलाफ़ पड़ता हो और जिससे दुनिया के सामने इस्लाम की ग़लत तस्वीर आती हो और ग़लत नुमाइन्दगी होती हो ।

५. दीन को क़ायम करना

यह तो आप जानते ही हैं कि अल्लाह की ओर से जितने भी नबी आये उन सब ने अल्लाह के बन्दों को एक अल्लाह की बन्दगी की दावत दी और दूसरी तमाम बन्दगियों से उन्हें आज़ाद कराया। क़ुरआन पाक में है—

"(नबियों ने कहा) सिर्फ़ अल्लाह की बन्दगी करो, उसके सिवा किसी की बन्दगी न करो।" — ११ : २ एवं ४६ : २९

उन सब ने कहा कि हाकिम, शासक सिर्फ़ अल्लाह है, उसके सिवा किसी को हुक्म देने का हक़ नहीं, इन्सान समेत पूरी कायनात का वह पैदा करने वाला है और इसलिए वही सबका मालिक और हाकिम है। क़ुरआन कहता है—

"अल्लाह मालिक है, उन तमाम चीज़ों का जो आसमानों में हैं और उन सबका जो ज़मीन में हैं।" — २ : १८४

"पैदा वही करता है और उसी के लिए हुकूमत का हक़ है।" — ७ : ३२

उन्होंने बताया कि पूजा और इबादत का हक़दार भी अल्लाह ही है और ग़ुलामी व फ़रमांबरदारी का भी। क़ुरआन मजीद में है :

"तुम्हारे रब की ओर से जो (दीन और क़ानून) तुम्हारी ओर उतारा गया है उसकी पैरवी करो और उसके सिवा किसी और को ख़ुदा न बनाओ कि उसकी पैरवी करने लगो।" — ६ : ३

मानो अल्लाह को रब मानने के मायने यह हैं कि उसके क़ानून को सही माना जाए और उस पर अमल किया जाए और किसी ऐसे क़ानून को सही न माना जाए जो अल्लाह की ओर से या उसके क़ानून के तहत न हो। ऐसे किसी क़ानून को सही समझ कर उस पर अमल करना 'शिर्क' है और क़ानून

गढ़ने वाले को ख़ुदा मानने के बराबर है । अल्लाह का दीन इसके अलावा और कुछ नहीं कि इन्सान की पूरी ज़िंदगी ख़ुदाई हुक्मों के मुताबिक़ हो जाए और ज़िंदगी का कोई हिस्सा भी अल्लाह के सिवा किसी और की ग़ुलामी में बसर न हो । क़ुरआन का फ़रमान है—

> "(हे नबी !) कहो ! बेशक मेरे रब ने मुझे सीधी राह दिखाई है । सही दीन जिस में कोई टेढ़ नहीं, जो इब्राहीम का रास्ता है, जो एक (अल्लाह) का हो रहा था और उसका 'शिर्क' से कोई वास्ता न था । कहो ! बेशक मेरी नमाज़, मेरी क़ुर्बानी, मेरा जीना और मरना, अल्लाह के लिए है, जो सारे जगत का रब है । उसका कोई शरीक नहीं, इसी का मुझे हुक्म मिला है और मैं सबसे पहले इताअत में सिर झुकाने वाला हूं ।" — ६ : १६१-१६२

सच यह है कि अल्लाह का दीन—इस्लाम—इन्सान की पूरी ज़िंदगी के लिए है—

"अल्लाह के नज़दीक इन्सान के लिए सच्चा दीन सिर्फ़ इस्लाम है ।"

> "हे ईमान लाने वालो ! (अल्लाह और रसूल की) फ़रमांबरदारी में सब-के-सब और पूरे-के-पूरे दाख़िल हो जाओ ।"

— २ : २०८

ज़िन्दगी के तमाम मामले सामाजिक हों या निजी, इस दीन से ठीक होते हैं । इसी दीन ने हमें यह बताया कि हम अल्लाह, आख़िरत, रसूलों, फ़रिश्तों और अल्लाह की किताबों के बारे में क्या अक़ीदे रखें । उसने हमें यह भी बताया कि इबादत किस की करें । उसने यह भी बता दिया कि बन्दे का अल्लाह से हक़ीक़ी ताल्लुक़ क्या है और उसे कैसे क़ायम किया जाए ? इस दीन ने यह भी बताया कि हमारी अख़लाक़ी ख़ूबियां क्या हों ? और ज़िंदगी को अख़्लाक़ी उसूलों के सांचे में कैसे ढालें ? इस दीन से हमें यह भी मालूम हुआ कि हमारे आपसी ताल्लुक़ात कैसे हों ? इन्सान के एक-दूसरे पर क्या हक़ होते हैं ? और ज़िन्दगी के मुख़्तलिफ़ मैदानों में मुख़्तलिफ़ लोगों और चीज़ों के ताल्लुक़ से उनकी क्या ज़िम्मेदारी होती

है। इस दीन ने कारोबार, लेन-देन, अर्थ-व्यवहार और राजनीति में भी हमारी पूरी रहनुमाई की है। उसने हमें बताया कि समाज का सुधार, मुल्की निज़ाम की बेहतरी और हुकूमत के सच्चे और मुन्सिफ़ाना उसूल क्या हैं? ग़रज़ यह कि ज़िंदगी के तमाम निजी और सामाजिक मामलों में हमें वह मार्ग दिखाया, जिस पर चल कर हम दुनिया में ही नहीं आख़िरत में भी हमेशा रहने वाली कामियाबी हासिल कर सकते हैं।

'दीन' का यह वसी मफ़हूम अगर आपके मन से ओझल न हो तो आप बड़ी आसानी से इस हक़ीक़त को पा सकते हैं कि इस्लाम की मुकम्मल पैरवी के लिए यह बात ज़रूरी है कि समाज का सुधार हो और ग़लत धर्मों और ज़िंदगी के तबाहकुन निज़ामों के बदले अल्लाह के 'दीन' और अल्लाह के उतारे हुए क़ानून को दुनिया में लागू किया जाए। दूसरी सूरत में ज़िंदगी का बहुत बड़ा हिस्सा ग़लत क़ानूनों की भेंट चढ़ जाएगा और हम ज़िंदगी के बहुत थोड़े हिस्से में अल्लाह की बन्दगी और उसके 'दीन' की पैरवी कर सकेंगे और वह भी उस वक़्त और उस हद तक जिस वक़्त और जिस हद तक वक़्त की हुकूमत से हमें इसकी इजाज़त हासिल होगी। यही वजह है कि अल्लाह के आख़िरी नबी (सल्ल०) दुनिया में सिर्फ़ इसलिए नहीं आए थे कि अल्लाह का पैग़ाम लोगों तक पहुंचा दें, बल्कि इसलिए भी आए थे कि इस 'दीन' को दुनिया के तमाम दीनों और ज़िंदगी के निज़ामों पर ग़ालिब कर दें। जैसा कि क़ुरआन में है—

> "वह अल्लाह ही है जिसने अपने रसूल को हिदायत और दीने हक़ के साथ भेजा, ताकि उसे तमाम दीनों पर ग़लिब करे चाहे मुश्रिकों को यह बात नापसन्द ही क्यों न हो।" — ६१:८

दीन को ग़ालिब करने का यह काम, जो अल्लाह के आख़िरी रसूल के आने का ख़ास मक़्सद था, सिर्फ़ अकेले आपकी कोशिश से पूरा नहीं हो सकता था। इसके लिए ज़रूरी था कि एक संगठित (मुत्तहिद) गिरोह आप के साथ हो और वह इस मक़्सद को हासिल करने के लिए अपनी ज़िन्दगी और ज़िंदगी की तमाम ताक़तें लगा दे। इसीलिए मुस्लिम उम्मत के आने का मक़्सद यह तय हुआ कि वह अल्लाह के 'दीन' को ग़ालिब

करने की कोशिश करती रहे। यहां तक कि ज़मीन के एक-एक टुकड़े पर ज़मीन के हक़ीक़ी हाकिम अल्लाह का क़ानून लागू हो जाए। इसीलिए ऊपर की आयत के फ़ौरन बाद कहा गया—

"हे ईमान वालो! मैं तुम्हें ऐसा कारोबार बताऊं, जो तुम्हें (अल्लाह के) दर्दनाक अज़ाब से छुटकारा दिला दे? (वह कारोबार यह है कि) तुम अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाओ और अल्लाह के मार्ग में अपने माल और जान से अनथक कोशिश करो। यही बात तुम्हारे लिए बेहतर है अगर तुम जानते हो। अल्लाह तुम्हारे गुनाहों को माफ़ कर देगा और तुम्हें ऐसी जन्नतों में पहुंचायेगा जिनके नीचे नहरें बहती होंगी और हमेशा की जन्नतों के बेहतरीन घर तुम्हें अता फ़रमायेगा। यही बड़ी कामियाबी है। और एक और चीज़ अता करेगा, जो तुम्हें प्रिय है यानी अल्लाह की मदद और क़रीबी फ़त्ह और (हे नबी!) ईमान वालों को ख़ुशख़बरी दे दो।" —६१:१०-१३

ये आयतें हमें बताती हैं कि दुनिया और आख़िरत की नाकामी और अल्लाह के दर्दनाक अज़ाब से बचने और दुनिया और आख़िरत में अल्लाह की मदद, रहमत, मग्फ़िरत और जन्नत हासिल करने की राह सिर्फ़ यह है कि अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाकर उसकी राह में भरपूर जद्दोजहद की जाए और "अल्लाह की राह में अनथक कोशिश" का इसके सिवा कोई मतलब नहीं कि इन्सान पूरे तौर पर सच्चे दिल से, पूरी यकसूई के साथ अल्लाह के 'दीन' की पैरवी, उसकी दावत और तबलीग़ और उसे ग़ल्बा दिलाने में लग जाए और इसके लिए अपनी सारी ताक़तें और अपने तमाम ज़रिए लगा दे।

अल्लाह के 'दीन' की पैरवी, उसकी ओर बुलाने, उसकी तब्लीग़ करने और उसे ग़ालिब करने की कोशिश को दूसरे लफ़्ज़ों में 'इक़ामते दीन' कहते हैं। क़ुरआन से मालूम होता है कि यही 'इक़ामते दीन' हर ज़माने में दीने हक़ के आने का मक़्सद रहा है। अल्लाह के नबी (उन पर अल्लाह की रहमत और सलामती हो) इसी मक़्सद को हासिल करने के लिए आते

रहे और ईमान वालों से कहा गया कि वे इस मक़्सद को हासिल करने के लिए इज्तिमाई कोशिश करें और इख़्तिलाफ़ से बचें। क़ुरआन में है—

> "तुम्हारे लिए अल्लाह ने वही दीन पसन्द किया जिसकी ताकीद उसने नूह को की थी, और जिसकी 'वह्य' (हे मुहम्मद !) हमने तुम्हारी ओर की है, जिसकी ताकीद हमने इब्राहीम और मूसा और ईसा को की कि (इस) दीन को क़ायम करो और इस मामले में फूट में न पड़ जाओ।" —४२ : १३

हक़ीक़त यह है कि मुस्लिम उम्मत के वजूद का एक ही मक़्सद है और वह यह कि संगठित (मुत्तहिद) होकर अल्लाह के 'दीन' की पैरवी, अल्लाह के 'दीन' की दावत और तब्लीग़ और उसे ग़ल्बा प्रदान करने की कोशिश करे। दूसरे लफ़्ज़ों में, 'इक़ामते दीन' को अपना मक़्सूद और मक़्सद बनाये और इसी एक मक़्सद को हासिल करने के लिए अपनी सारी ताक़तें लगा दे। जब तक मुस्लिम उम्मत 'इक़ामते दीन' को अपना मक़्सद नहीं बनाती और मुत्तहिद होकर उसे हासिल करने के लिए कोशिश नहीं करती, उसकी समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता और वह दुनिया में नाकाम ही रहेगी। मानव-जाति को नाकामी और ताबाही से न बचा सकेगी। आख़िरत में अल्लाह के यहां कामियाब न हो सकेगी और इस जुर्म में पकड़ी जायेगी कि मुस्लिम होने का दावा करने के बावजूद उसने इस्लाम की दावत और तब्लीग़ और उसकी 'इक़ामत' (स्थापना) का हक़ क्यों अदा नहीं किया?

'इक़ामते दीन' का यह काम उसी वक़्त हो सकता है जब हर मुसलमान अपनी पूरी ज़िंदगी में अल्लाह के 'दीन' (धर्म) की पैरवी करे और जबकि मुसलमान निजी और इज्तिमाई तौर से अल्लाह के दीन के पैग़ाम को अल्लाह के बन्दों तक पहुंचाने में लगे रहें। यहां तक कि उनकी समझ में यह आ जाए कि उनकी दुनियावी कामियाबी और आख़िरत की नजात और कामियाबी अल्लाह के 'दीन' को क़ुबूल करने और उस पर अमल करने में है और वे यह फ़ैसला करें कि हुकूमत समेत ज़िंदगी का मुकम्मल निज़ाम अल्लाह के 'दीन' के मुताबिक़ होना चाहिए।

६. जमाअत इस्लामी हिन्द

पिछले पन्नों में यह बात साफ़ की जा चुकी है कि हर मुसलमान और पूरी मुस्लिम उम्मत का मक़्सद एक ही है और वह है अल्लाह के 'दीन' की सच्ची गवाही और उसका क़याम । यह एक अफ़सोसनाक सच है कि मुसलमान आम तौर से अपने इस असली मक़्सद से बेपरवाह हैं और ग़लत मक़्सदों और कामों में अपनी ज़िन्दगी बर्बाद कर रहे हैं और इसके नतीजे में अपनी दुनिया को तबाह और आख़िरत को ख़राब कर रहे हैं ।

जमाअत इस्लामी हक़ीक़त में मुस्लिम उम्मत को इस भूले हुए सबक़ की याद दिला रही है । दूसरे ख़ुदा के बन्दों को उसी की ओर बुलाने के लिए वजूद में आई है । अल्लाह के 'दीन' को क़ायम करना ही उसका मक़्सद है । वह मुसलमानों को याद दिलाती है कि यही मक़्सद उनका हक़ीक़ी मक़्सद है । इसलिए उन्हें हर ओर से कट कर इसी एक काम के लिए यकसू हो जाना चाहिए । ग़ैर-मुस्लिमों को वह इस हक़ीक़त से वाक़िफ़ कराती है कि उनकी दुनियावी भलाई और आख़िरत की सफलता अल्लाह के भेजे हुए सत्य-धर्म इस्लाम में है । उन्हें इस्लाम की दावत पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए, और आज़ाद होकर दिल और दिमाग़ से उनकी सच्चाई को देखना चाहिए ।

जमाअत इस्लामी हिन्द का एक दस्तूर है, जिसके तहत जमाअत का सारा काम होता है । इस दस्तूर को जमाअत के मेम्बरों के चुने हुए नुमाइन्दों की मंज़ूरी हासिल है । इस दस्तूर में जमाअत के मक़्सद का ज़िक्र इस तरह है—

"जमाअत-इस्लामी हिन्द का मक़्सद 'इक़ामते दीन' है, जिसकी हक़ीक़ी ग़रज़ सिर्फ़ अल्लाह की ख़ुशी और आख़िरत की

कामियाबी हासिल करना है।"

तश्रीह : "इक़ामते दीन" में 'दीन' लफ़्ज़ से मुराद वह दीने हक़ है। जिसे सारे जगत् का रब अपने तमाम 'नबियों' के ज़रिए विभिन्न ज़मानों और विभिन्न देशों में भेजता रहा और जिसे आख़िरी और मुकम्मल शक्ल में तमाम इन्सानों की रहनुमाई के लिए अपने आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के ज़रिए भेजा और अब दुनिया में एक ही मुस्तनद, महफ़ूज़ और अल्लाह के यहां क़ाबिले क़ुबूल दीन है और जिसका नाम 'इस्लाम' है।

यह दीन इन्सान के ज़ाहिर और बातिन और उसकी ज़िंदगी के तमाम निजी और सामाजिक पहलुओं को घेरे हुए है। अक़ीदे इबादत अख़्लाक़ और अर्थ (मईशत) से लेकर समाज और राजनीति तक इन्सानी ज़िंदगी का कोई एक पहलू भी ऐसा नहीं है जो उसकी हद से बाहर हो। यह 'दीन' जिस तरह अल्लाह की ख़ुशी और आख़िरत की कामियाबी का ज़ामिन है, उसी तरह दुनियावी मसलों के मुनासिब हल के लिए बेहतरीन निज़ामे ज़िंदगी भी है। निजी और सामाजिक जीवन की सेहतमन्द और तरक़्क़ी पज़ीर तामीर केवल इसी के क़याम से मुम्किन है।

इस 'दीन' की 'इक़ामत' (स्थापना) का मतलब यह है कि किसी काट-छांट के और फ़र्क़ के बिना इस पूरे 'दीन' की सच्चे दिल से पैरवी की जाये और हर ओर से यकसू होकर की जाये और इन्सानी ज़िंदगी के निजी और सामाजिक तमाम हिस्सों में इस तरह लागू किया जाए कि व्यक्ति का विकास, समाज और राज्य की तामीर और निर्माण सब-कुछ इसी दीन के मुताबिक़ हो।

इस 'दीन' की 'इक़ामत' का मिसाली और बेहतरीन अमली नमूना वह है, जिसे हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और ख़ुलफ़ा-ए-राशदीन (अर्थात् आपके सच्चे ख़लीफ़ाओं) ने क़ायम किया था। (उन सबसे अल्लाह राज़ी हो।)"   — संविधान जमाअत इस्लामी हिन्द, दफ़ा ४, नस्बुल ऐन

कार्य-प्रणाली (काम का तरीक़ा)

इस मक़सद के हुसूल के लिए जमाअत इस्लामी हिन्द ने जो तरीक़ेकार (कार्य-प्रणाली) अपनाया है, वह तब्लीग़ और समझने-समझाने का तरीक़ा है न कि ज़ोर-ज़बरदस्ती और तशद्दुद व हिंसा का। यह बात जमाअत के दस्तूर की इस दफ़ा में खोल कर बयान कर दी गई है, जिससे जमाअत की कार्य-प्रणाली (तरीक़ेकार) पर रोशनी पड़ती है।

१. क़ुरआन और सुन्नत जमाअत के काम की बुनियाद होंगी। दूसरी सारी चीज़ें सानवी हैसियत में सिर्फ़ उस हद तक सामने रखी जाएंगी जिस हद तक कि क़ुरआन और सुन्नत की नज़र से उनकी गुंजाइश हो।

२. जमाअत अपने तमाम कामों में अख़्लाक़ी हुदूद की पाबंद होगी और कभी ऐसे साधन और तरीक़े इस्तेमाल न करेगी, जो सच्चाई और दयानत के ख़िलाफ़ हों या जिनसे साम्प्रदायिक (फ़िरक़ावाराना) नफ़रत, तबक़ाती कशमकश (वर्ग-संघर्ष) और धरती में बिगाड़ पैदा हो।

३. जमाअत अपने मक़सद और नस्बुल ऐन को हासिल करने के लिए तामीरी और पुर-अम्न तरीक़े अपनाएगी, यानी वह तब्लीग़ और विचार-प्रकाशन के ज़रिए दिल, दिमाग़ और किरदार का सुधार करेगी और इस तरह देश के सामाजिक-जीवन में मतलूब सालेह तब्दीली लाने के लिए जनमत की तरबियत करेगी।

— संविधान जमाअत इस्लामी हिन्द, दफ़ा ५, खंड १, २, ३

जमाअत की दावत मुसलमानों और ग़ैर-मुस्लिमों दोनों के लिए है और जमाअत के लोग दोनों तबक़ों तक अपना पैग़ाम पहुंचाते हैं।

जमाअत मुल्क और मिल्लत के उन तमाम कामों में अपनी ताक़त भर हिस्सा लेती है, जो उसकी नज़र में दीनी और अख़्लाक़ी हैसियत से सही और मुनासिब हों। इसलिए वह जहां दंगों का शिकार होने वाले लोगों की रिलीफ के लिए पूरे देश में काम करती रही है, वहीं बाढ़, अकाल, आगज़नी

और दूसरे हादसों और अवसरों पर और मुख़्तलिफ़ गिरोहों और इन्सानों में फ़र्क़ किये बिना तमाम लोगों की ख़िदमत का फ़र्ज़ निभाती रही है। तफ़्सीली जानकारी के लिए देखिए, 'जमाअत इस्लामी हिन्द—एक परिचय' प्रकाशन मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी, दिल्ली-६

जमाअत इस्लामी की मज्लिसे शुरा (मंत्रणा परिषद्) ने जो प्रोग्राम अपने मक़्सद के हुसूल के लिए तय किया है, वह अलग किताब के रूप में छप चुका है। उसे देखने से इस प्रोग्राम का एक ख़ाका सामने आ सकता है, जिसे जमाअत इस्लामी हिन्द अमली शक्ल देना चाहती है। हर एक को देखना चाहिए कि वह इस सिलसिले में जमाअत के साथ कहां तक सहयोग और ताव्वुन कर सकता है।